International Journal of Applied Research 2020; 6(11): 302-306

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2020; 6(11): 302-306
www.allresearchjournal.com
Received: 23-09-2020
Accepted: 25-10-2020

प्रेम शंकर राय
एम० ए० (इतिहास), बी० एड०, एम० ए० (एडुकेशन) आदर्श नगर, फुलवारीशरीफ, पटना, बिहार, भारत

Corresponding Author:
प्रेम शंकर राय
एम० ए० (इतिहास), बी० एड०, एम० ए० (एडुकेशन) आदर्श नगर, फुलवारीशरीफ, पटना, बिहार, भारत

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का उदय एवं विकास (1858–1905) का मूल्यांकन

प्रेम शंकर राय

सारांश
उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेजी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभ हुआ। दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव पड़ी। आगे चलकर इसी के नेतृत्व में विदेशी शासन से स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने एक लंबा और साहसपूर्ण संघर्ष चलाया, और अंत में 15 अगस्त, 1947 को भारत मुक्त हो गया।

मुख्य शब्द : राष्ट्रीय, भारतीय, दासन, अंग्रेज

प्रस्तावना:
आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब रूप में उदित हुआ। स्वयं ब्रिटिश शासन की परिस्थितियों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने में सहायता दी। ब्रिटिश शासन तथा उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणामों ने ही भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के लिए भौतिक, नैतिक और बौद्धिक परिस्थितियां तैयार की।
इस आंदोलन की जड़े भारतीय जनता के हितों तथा मानव में ब्रिटिश हितों के टकराव में थी। अंग्रेजों ने अपने हितों को पूरा करने के लिए ही भारत को अधीन बनाया था और इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर वे भारत का शासन चलाते थे। वे अक्सर ब्रिटेन के लाभ के लिए भारतीयों की भलाई को ध्यान में नहीं रखते थे। धीरे–धीरे भारतीयों ने अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों तथा अंग्रेजों के दूसरे प्रमुख वर्गो के हितों के लिए उनके अपने हितों का बलिदान दिया जा रहा है।
स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण बनता गया और भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का आधार यही तथ्य था। यह भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्त्व बन चुका था। इससे भी बड़ी बात यह है कि अधिक संख्या में भारतीय इस तथ्य को स्वीकार करने लगे थे और उनकी यह संख्या बढ़ती जा रही थी।
आगे चलकर बीसवीं शताब्दी में आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बागानों के मजदूरों ने भी पाया कि सारी जुबानी हमदर्दी के बावजूद सरकार पूंजीपतियों का, खासकर विदेशी पूंजीपतियों का ही साथ देती थी। जब कभी मजदूर ट्रेड यूनियन बनाने तथा हड़तालों, प्रदर्शनों और दूसरे संघर्षो के द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करते, सरकार का पूरा तंत्र उनके खिलाफ उठ खड़ा होता। इसके अलावा उन्होंने यह भी महसूस किया कि बढ़ती बेरोजगारी का समाधान केवल तीव्र औद्योगीकरण से संभव है और यह कार्य केवल एक स्वाधीन सरकार कर सकती है।

देश का प्रशासकीय और आर्थिक एकीकरण
उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भारत का एकीकरण हो चुका था और वह एक राष्ट्र के रूप में उभर चुका था। इसलिए भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का विकास आसानी से हुआ। अंग्रेजों ने धीरे–धीरे पूरे देश में सरकार की एकसमान, आधुनिक प्रणाली लागू कर दी थी और इस तरह इसका प्रशासकीय एकीकरण हो चुका था। ग्रामीण और स्थानीय आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विनाश तथा अखिल भारतीय पैमाने पर आधुनिक व्यापार तथा उद्योग की स्थापना के कारण भारत का आर्थिक जीवन निरंतर एक इकाई के रूप में ढलता चला गया तथा देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के आर्थिक हित परस्पर संबद्ध हुए। उदाहरण के लिए, भारत के किसी एक भाग में अकाल पड़ता या वस्तुओं की कमी होती तो दूसरे सभी भागों में भी खाद्य सामग्री की कीमतों तथा उपलब्धता पर उसका प्रभाव पड़ता था। इसके अलावा, रेलवे, तार, तथा एकीकृत डाक व्यवस्था के समारंभ ने भी

देश को एकजूट बना दिया था और जनता, खासकर नेताओं के पारस्परिक संपर्क को बढ़ावा दिया था।

इस सिलसिले में भी, विदेशी शासन का अस्तित्व ही एकता का कारण बन गया, क्योंकि यह शासन सामाजिक वर्ग, जाति, धर्म या क्षेत्र का भेद किए बिना पूरी भारतीय जनता का दमन करता था। पूरे देश के लोगों ने देखा कि वे एक ही शत्रु अर्थात् ब्रिटिश शासन, के हाथों पीड़ित थे। एक तरफ तो यह भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण बन गया और दूसरी तरफ साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष तथा उस संघर्ष के दौरान उपजी एकजूटता की भावना ने भारतीय राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

पश्चिमी विचार और शिक्षा

उन्नीसवीं सदी में आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा के प्रचार के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में भारतीयों ने एक आधुनिक, बुद्धिसंगत, धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक तथा राष्ट्रवादी राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाया। वे यूरोपीय राष्ट्रों के समसामयिक राष्ट्रवादी आंदोलनों का अध्ययन, उसकी प्रशंसा तथा उनका अनुकरण करने के प्रयत्न भी करने लगे। रूसो, पेन, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा दूसरे पाश्चात्य विचारक उनके राजनीतिक मार्गदर्शक बन गए जबकि मैजिनी, गैरीबाल्डी तथा आयरलैंड के राष्ट्रवादी नेता उनके राजनीतिक आदर्श हो गए।

विदेशी दासता के अपमान की चुभन को सबसे पहले इन्हीं शिक्षित भारतीयों ने महसूस किया। विचारों से आधुनिक बनकर इन लोगों ने विदेशी शासन की बुराईयों के अध्ययन की योग्यता भी प्राप्त कर ली। उन्हें एक आधुनिक, मजबूत, समृद्ध और एकताबद्ध भारत की कल्पना से प्रेरणा प्राप्त होती रही। कालांतर में, इन्हीं में से बेहतरीन लोग राष्ट्रीय आंदोलन के नेता और संगठनकर्त्ता बने।

हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि राष्ट्रीय आंदोलन आधुनिक शिक्षा प्रणाली की उपज नहीं था, बल्कि वह ब्रिटेन तथा भारत के हितों के टकराव से उत्पन्न हुआ था। इस प्रणाली ने शिक्षित भारतीयों को पाश्चात्य विचार अपनाकर राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व संभालने तथा उसे एक जनतांत्रिक और आधुनिक दिशा देने में समर्थ बनाया। वास्तविकता यह है कि स्कूलों तथा कॉलेजों में अधिकारीगण विदेशी शासन के प्रति विनम्रता और सेवा का भाव ही जगाने के प्रयत्न करते थे। राष्ट्रवादी विचार तो आधुनिक विचारों के सामान्य प्रसार के कारण आए। चीन तथा इंडोनेशिया जैसे दूसरे एशियाई देशों में तथा पूरे अफ्रीका में भी आधुनिक और राष्ट्रवादी विचार फैले हालांकि वहां आधुनिक स्कूलों और कॉलेजों की संख्या बहुत ही कम थी।

आधुनिक शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों के दृष्टिकोणों तथा हितों में तक सीमा एक एकजूटता और समानता पैदा की। इस सिलसिले में अंग्रेजी भाषा की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यह आधुनिक विचारों के प्रसार का साधन बन गई। यह देश के विभिन्न भाषाई क्षेत्रों के शिक्षित भारतीयों के बीच विचारों के आदान–प्रदान तथा संपर्क का भी माध्यम बन गई। लेकिन जल्दी ही अंग्रेजी साधारण जनता में आधुनिक ज्ञान के प्रसाद में बाधक भी बन गई। यह शिक्षित नागरिक वर्गो को साधारण, जनता से अलग रखने का काम भी करने लगी। भारत के राजनीतिक नेताओं ने इस तथ्य को अच्छी तरह सम दादाभाई नौरोजी, सैयद अहमद खान और जस्टिस रानाडे से लेकर तिलक और गोखले जी तक सभी ने शिक्षा प्रणाली में भारतीय भाषाओं को एक बड़ी भूमिका दिए जाने की मांग की । वास्तव में, जहां तक साधारण जनता का सवाल था, आधुनिक विचारों का प्रसार विकासमान भारतीय भाषाओं, उनमें विकसित हो रहे साहित्य तथा सबसे अधिक तो भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय प्रेस के कारण हुआ।

प्रेस तथा साहित्य की भूमिका

वह प्रमुख साधन प्रेस था जिसके द्वारा राष्ट्रवादी भारतीयों ने देशभक्ति की भावनाओ और आधुनिक आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक विचारों का प्रचार किया तथा एक अखिल भारतीय चेतना जगाई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी समाचारपत्र निकले। उनके पन्नों पर सरकारी नीतियों की लगातार आलोचना होती थी, भारतीय दृष्टिकोण को सामने रखा जाता था, लोगों को एकजूट होकर राष्ट्रीय कल्याण के काम करने को कहा जाता था तथा जनता के बीच स्वशासन, जनतंत्र, औद्योगीकरण आदि विचारों को लोकप्रिय बनाया जाता था। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले राष्ट्रवादी कार्यकर्त्ताओं को भी परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करने में प्रेस ने समर्थ बनाया। उपन्यासों, निबंधों और देशभक्तिपूर्ण काव्य आदि के रूप में राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई। बंगला में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय तथा रवींद्रनाथ ठाकुर, असमी में लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, मराठी में विष्णु शास्त्री चिपलुणकर, तमिल में सुब्रमण्यम भारती, हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र और उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली इस काल के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी लेखक थे।

भारत के अतीत की खोज

अनेक भारतीय इस कदर पस्त हो चुके थे कि वे अपनी स्वशासन की क्षमता में एकदम भरोसा खो बैठे थे। इसके अलावा इस समय के अधिकांश ब्रिटिश अधिकारी और लेखक लगातार यह बात दोहराते रहते थे कि भारतीय लोग कभी भी अपना शासन चलाने के योग्य नहीं थे। वे लगातार भारतीयों की निंदा करने वाली बातें फैलाते रहते थे। मलसन हिंदू और मुसलमान हमेशा आपस में लड़ते रहें हैं, भारतीयों के भाग्य में ही विदेशियों के अधीन रहना लिखा है, उनका धर्म और सामाजिक जीवन पतित और असभ्य रहे हैं और इस कारण वे लोकतंत्र या स्वशासन तक के काबिल नहीं है। इस प्रचार का जबाव देकर अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने जनता में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगाने के प्रयत्न किए। वे गर्व से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की ओर संकेत करते और आलोचकों का ध्यान अशोक, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य और अकबर जैसे शासकों की ओर खींचने का प्रयास करते। विद्वानों ने कला, स्थापत्य, साहित्य, दर्शन, विज्ञान और राजनीति में भारत की राष्ट्रीय धरोहर की फिर से खोज कराने में जो कुछ किया, उससे इन राष्ट्रवादी नेताओं को बल तथा प्रोत्साहन मिला। दुर्भाग्य से कुछ राष्ट्रवादी नेता दूसरे छोर तक चले गए तभा भारत के अतीत की कमजोरियों और पिछड़ेपन से आंखे चुराकर गैर आलोचनात्मक ढंग से उसे महिमामांडित करने लगे। खासतौर पर प्राचीन भारत की उपलब्धियों का प्रचार करने तथा मध्यकालीन भारत की उतनी ही महान उपलब्धियों को अनदेखा करने की प्रवृत्ति ने भी बहुत नुकसान पहुंचाया। इसके कारण हिंदुओं में सापंद्रायिक भावनाओं के विकास को प्रोत्साहन मिला। साथ ही इसकी जवाबी प्रवृत्ति के रूप में मुसलमान सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रेरणा पाने के लिए, अरबों तथा तुर्को के इतिहास की ओर नजर करने लगे। इसके अलावा, पश्चिम के सांस्कृतिक साम्रज्यवाद की चुनौती का जबाव देते समय बहुत से भारतीय यह बात भी भूल जाते थे कि भारत की जनता कई क्षेत्रों में सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी थी। इससे गर्व तथा आत्मसंतोष की एक झूठी भावना पनपी जो भारतीयों को अपने समाज के आलोचनात्मक अध्ययन से रोकती थी। इसके कारण सामाजिक–सांस्कृतिक पिछड़ेपन के खिलाफ संघर्ष कमजोर हुआ तथा अनेक भारतीय दूसरी जातियों को स्वस्थ और नई प्रवृत्तियों एवं नए विचारों से विमुख रहे।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

राष्ट्रवादी कार्यकर्त्ताओं का एक अखिल भारतीय संगठन बनाने की योजना अनेक भारतीय तैयार करते आ रहे थे। लेकिन इस विचार को एक ठोस और अंतिम रूप देने का श्रेय एक सेवानिवृत्त अंग्रेज सिविल सर्वेंट ए.ओ. ह्यूम को जाता है। उन्होंने प्रमुख भारतीय

नेताओं से संपर्क किया और उनके सहयोग से बंबई में दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता डब्ल्यू.सी. बनर्जी ने की तथा इसमें कई प्रतिनिधि शामिल थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्य इस प्रकार घोषित किए गए– देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करना, जाति धर्म–प्रांत का भेद किए बिना राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित तथा मजबूत करना, जनप्रिय मॉगों का निरूपण तथा उन्हें सरकार के सामने रखना और सबसे महत्वपूर्ण यह कि देश में जनमत को प्रशिक्षित और संगठित करना।

कहा जाता है कि कांग्रेस की स्थापना के पीछे ह्यूम का प्रमुख उद्देश्य शिक्षित भारतीयों में बढ़ रहे असंतोष की सुरक्षित निकासी के लिए एक ''सेफ्टी वॉल्व'' बनाना था। वे असंतुष्ट राष्ट्रवादी शिक्षित वर्गो तथा असंतुष्ट किसान जनता के आपसी मेल को रोकना चाहते थे।

मगर यह ''सेफ्टी वॉल्व'' का सिद्धांत सच्चाई का बहुत छोटा अंश है और यह पूरी तरह अपर्याप्त तथा भ्रामक है। राष्ट्रीय कांग्रेस सबसे बढ़कर राजनीतिक चेतना–प्राप्त भारतीयों की इस आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करती थी कि उनकी आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के लिए कार्यरत एक राष्ट्रीय संगठन बनाया जाए। हम पहले ही देख चुके हैं कि कुछ जबरदस्त शक्तियों के कार्यरत होने के परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीय आंदोलन पहले से ही फैल रहा था। इस आंदोलन के जन्म के लिए किसी एक व्यक्ति या कुछ एक व्यक्तियों को श्रेय नहीं दिया जा सकता। ह्यूम के अपने उद्देश्य भी मिले–जुले थे। वे ''सेफ्टी वॉल्व'' बनाने के विचार से कहीं अधिक श्रेष्ठ विचारों से प्रेरित थे। वे भारत से तथा इसके गरीब किसानों से सचमुच प्यार करते थे। कुछ भी हो, राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म देने मे जिन भारतीयों नेताओं ने ह्यूम मं सहयोग किया, वे ऊंचे चरित्र वाले देशभक्त लोग थे। उन्होंने जान–बुझकर ह्यूम की सहायता इसलिए ली कि वे राजनीतिक कार्यकलाप के आरभ में ही अपने प्रयासों के प्रति सरकार की शत्रुता मोल लेना नहीं चाहते थे। उन्हें आशा थी कि एक सेवानिवृत्त सिविल सर्वेंट की उपस्थिति अधिकारियों की आशंकाओं का समाधान करेगी। अगर ह्यूम कांग्रेस का उपयोग एक ''सेफ्टी वॉल्व'' के रूप में करना चाहते थे तो कांग्रेस के आरंभिक नेताओं को आशा थी कि वे ह्यूम का उपयोग एक ''तड़ित चालक' के रूप में कर सकेंगे।

इस तरह 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर लेकिन संगठित रूप में, विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का संघर्ष आरंभ हो गया। इसके बाद तो राष्ट्रीय आंदोलन बढ़ता ही गया तथा देश और देश की जनता ने स्वाधीन होने तक आराम को हरात जाना। आरंभ से ही कांग्रेस ने एक पार्टी नहीं, बल्कि एक आंदोलन का काम किया। 1886 में कांग्रेस के 436 प्रतिनिधि विभिन्न स्थानीय संगठनों तथा समूहों द्वारा चुने गए थे। इसके बाद कांग्रेस हर वर्ष दिसंबर में और हर बार देश के एक नए भाग में अपने अधिवेशन करती रही। जल्द ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर हजारों में पहुंच गई। इसके प्रतिनिधियों में अधिकांश लोग वकील, पत्रकार, व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक और जमींदार होते थे। 1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक कादंबिनी गांगुली ने कांग्रेस के अधिवेशन को संबोधित किया। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत का स्वाधीनता संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुंचा दी गई थी।

साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना

साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना आरंभिक राष्ट्रवादियों का संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण राजनतिक कार्य था। उन्होंने तत्कालीन औपनिवेशिक आर्थिक शोषण के सभी तीनों रूपों, अर्थात् व्यापार, उद्योग तथा वित्त के द्वारा शोषण पर ध्यान दिया। उन्होंने अच्छी तरह समझा कि ब्रिटेन के आर्थिक साम्राज्यवाद का मूल तत्त्व भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन बनाना था। भारत में एक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के मूल तत्त्वों को विकसित करने के ब्रिटिश प्रयासों का उन्होंने तीखा विरोध किया। ये तत्त्व थे– कच्चा माल पैदा करने वाले देश, ब्रिटिश उद्योगों में पैदा माल के लिए मंडी, तथा विदेशी पूंजी के निवेश के क्षेत्र के रूप में भारत का रूपांतरण। उन्होंने इस औपनिवेशिक ढांचे पर आधारित सरकार की लगभग सभी महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों के खिलाफ एक शक्तिशाली आंदोलन खड़ा किया।

सांविधानिक सुधार

शुरू के राष्ट्रवादियों का आरंभ से ही यह विश्वास था कि भारत में अंततः लोकतांत्रिक स्वशासन लागू होना चाहिए। लेकिन उन्होंने इस लक्ष्य को फौरन प्राप्त किए जाने की मांग नहीं की। उनकी तात्कालिक मांगे अत्यधिक साधारण थी। वे एक–एक कदम उठाकर स्वाधीनता की मंजिल तक पहुंचना चाहते थे। वे बहुत सावधान भी थे कि सरकार उनकी गतिविधियों को कुचल न दे। 1885 से 1892 तक वे विधायी परिषदों के प्रसार और सुधार की ही मांग उठाते रहे।

उनके आंदोलन के दबाव में ब्रिटिश सरकार को 1892 में भारतीय परिषद् कानून पास करना पड़ा। इस कानून द्वारा विधायी परिषद तथा प्रांतीय परिषदों में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। इनमें से कुछ सदस्यों को भारतीय अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुन सकते थे, मगर बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहता। राष्ट्रवादी 1892 के कानून से पूरी तरह असंतुष्ट थे तथा उन्होंने इसे मजाक बतलाया। उन्होंने परिषदो में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा उन्हें अधिक अधिकार दिए जाने की मांग उठाई। खासतौर पर उन्होंने सार्वजनिक धन पर भारतीयों के नियंत्रण की मांग की तथा वह नारा दिया जो इससे पहले अमरीकी जनता ने अपने स्वाधीनता के युद्ध के दौरान लगाया था। यह नारा थाः 'प्रतिनिधित्व नहीं, तो कर भी नहीं।' पर साथ ही साथ वे अपनी लोकतांत्रिक मांगों के आधार को व्यापक बनाने में असफल रहें; उन्होंने जनता के लिए या स्त्रियों के लिए मताधिकार की मांग नहीं की।

बीसवीं सदी के आरंभ तक राष्ट्रवादी नेता और आगे बढ़ चुके थे और उन्होंने आस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे स्वशासित उपनिवेशों की तर्ज पर ब्रिटिश साम्राज्य के अंदर रहकर ही स्वशासन (स्वराज्य) का दावा पेश किया। कांग्रेस के मंच से इस मांग को 1905 में गोखले और 1906 में दादाभाई नौरोजी ने उठाया।

प्रशासकीय और अन्य सुधार

आरंभिक राष्ट्रवादी व्यक्तिवादी प्रशासकीय फैसलों के निर्भीक आलोचक थे तथा उन्होंने भ्रष्टाचार, निकम्मापन और दमन से ग्रस्त शासन प्रणाली के सुधार के लिए अथक प्रयास किए। जो सबसे महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय सुधार वे चाहते थे, वह यह था कि प्रशासकीय सेवाओं के उच्चतर पदों का भारतीयकरण हो। उन्होंने आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक आधारों पर यह मांग उठाई। आर्थिक, दृष्टि से उच्चतर पदों पर यूरोपीय एकाधिकार दो कारणों से हानिकारक था : (अ) यूरोपीय लोगों को बहुत ऊँचे वेतन दिए जाते थे और इसी से भारत का प्रशासन बहुत खर्चीला हो जाता था, जबकि समान योग्यता वाले भारतीयों को कम वेतन पर रखा जा सकता था और (ब) यूरोपीय लोग अपने वेतन का एक बड़ा भाग भारत से बाहर भेज देते थे और उनकों पेंशन भी इंग्लैंड में अदा की जाती थी। इससे भारत की संपत्ति का दोहन और बढ़ता था। राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रवादियों का मत था कि इन सेवाओं का भारतीयकरण करने पर प्रशासन भारत की आवश्यकताओं के प्रति और सजग होता।

नागरिक अधिकारों की रक्षा

आरंभ में ही राजनीतिक चेतना–प्राप्त भारतीय लोकतंत्र ही नहीं, बल्कि भाषण, प्रेस, विचार तथा संगठन की स्वतंत्रता जैसे

आधुनिक नागरिक अधिकारों के प्रति भी आकर्षित थे। जब भी सरकार इन नागरिक अधिकारों को सीमित करने के प्रयास करती, वे जमकर उनका विरोध करते। यही वह काल था जिसमें राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्य के फलस्वरूप आमतौर पर पूरी भारतीय जनता तथा खासतौर पर शिक्षित वर्गो में लोकतांत्रिक विचार अपनी जड़ें जमाने लगे। वास्तव में लोकतांत्रिक स्वतंत्रता का संघर्ष स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष का अभिन्न अंग बन गया। 1897 में बंबई की सरकार ने बाल गंगाधर तिलक समेत दूसरे कई नेताओं और समाचारपत्रों के संपादकों को सरकार के खिलाफ असंतोष भड़काने के लिए गिरफ्तार कर लिया और उन पर मुकदमा चलाया। उनको लंबी–लंबी कैद की सजाएं दी गई। इसी के साथ पूना के दो नाटू भाइयों को बिना किसी मुकदमे के अंडमान भेज दिया गया। जनता की स्वतंत्रता पर इस हमले का पूरे देश में विरोध हुआ। तिलक जिन्हें अभी तक मुख्यतः महाराष्ट्र में ही जाना जाता था, रातों–रात अखिल भारतीय नेता बन गए।

राजनीतिक कार्य की विधियां

1905 तक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन पर उन लोगों का वर्चस्व था जिनको प्रायः नरमपंथी राष्ट्रवादी कहा जाता है। कानून की सीमा में रहकर सांविधानिक आंदोलन तथा धीरे–धीरे, व्यवस्थित ढंग से राजनीतिक प्रगति–इन शब्दों में नरमपंथियों की राजनीतिक कार्यपद्धति को संक्षेप में रखा जा सकता है। उनका विश्वास था कि अगर जनमत को उभारा और संगठित किया जाए और प्रार्थनापत्रों, सभाओं, तथा भाषणों के द्वारा अधिकारियों तक जनता की मांगों को पहुंचाया जाए तो वे धीरे–धीरे एक–एक करके इन मांगों को पूरा करेंगे।

इसलिए उनके राजनीतिक कार्य की दो दिशाएं थी। प्रथम, भारत की जनता में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए एक शक्तिशाली जनमत तैयार करना, तथा जनता को राजनीतिक प्रश्नों पर शिक्षित और एकताबद्ध करना। राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव तथा प्रार्थनापत्र भी मूलतः इसी लक्ष्य द्वारा निर्देशित थे। हालांकि देखने में तो उनके स्मरणपत्र और प्रार्थनापत्र सरकार को संबोधित थे, मगर उनका वास्तविक उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित करना था।

जनता की भूमिका

संकुचित सामाजिक आधार आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन की बुनियादी कमजोरी थी। अभी जनता में इस आंदोलन की पैठ नहीं हुई थी। वास्तव में जनता में नेताओं की कोई राजनीतिक आस्था नहीं थी। सक्रिय राजनीतिक संघर्ष छेड़ने की समस्याओं का वर्णन करते हुए गोपालकृष्ण गोखले ने कहा कि 'देश में विभाजन तथा उपविभाजन की एक अंतहीन शृंखला है, जनता का अधिकांश भाग अज्ञान से भरा हुआ तथा विचार और भावना के पुराने तरीकों से कसकर चिपका हुआ है और यह जनता हर प्रकार के परिवर्तन की विरोधी है और परिवर्तन को समझती नहीं है। इस प्रकार नरमपंथी नेताओं का विश्वास था कि औपनिवेशिक शासन के खिलाफ जुझारू जन–संघर्ष तभी छेड़ा जा सकता है जब भारतीय समाज के बहुविध तत्त्वों को एक राष्ट्र के सूत्र में बांधा जा चुका हो। परंतु वास्तव में यही तो यह संघर्ष था जिसके दौरान भारतीय राष्ट्र का निर्माण हो सकता था। जनता के प्रति इस गलत दृष्टिकोण का नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक चरण में जनता की भूमिका निष्क्रिय ही रही। इससे राजनीतिक नरमी का जन्म हुआ। जनता के समर्थन के अभाव में वे जुझारू राजनीतिक उपाय नहीं अपना सकते थे। हम आगे देखेंगे कि बाद के राष्ट्रवादी लोग नरमपंथियों से ठीक इसी अर्थ में भिन्न थे।

फिर भी आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन के संकुचित सामाजिक आधार से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह उन्हीं सामाजिक वर्गो के संकुचित हितों तक सीमित था जो इसमें शामिल थे। इसके कार्यक्रम और इसकी नीतियां भारतीय जनता के सभी वर्गो के हितों से जुड़ी थी और औपनिवेशिक वर्चस्व के विरूद्ध उदीयमान भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती थीं।

सरकार का रवैया

आरंभ से ही ब्रिटिश अधिकारी उभरते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के खिलाफ तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति शंकालु थे। वायसरॉय डफरिन ने ह्यूम को यह सुझाव दिया कि कांग्रेस राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक मामलों को देखे और इस तरह उसने राष्ट्रीय आंदोलन को दिशाभ्रष्ट करना चाहा। लेकिन कांग्रेस के नेताओं ने ऐसा परिवर्तन करने से इंकार कर दिया। परंतु जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय कांग्रेस अधिकारियों के हाथों का खिलौना नहीं बन सकती और वह धीरे–धीरे भारतीय राष्ट्रवाद का केंद्रबिंदु बनती जा रही थी। अब ब्रिटिश अधिकारी खुलकर राष्ट्रीय कांग्रेस तथा दूसरे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं की आलोचना और निंदा करने लगे। डफरिन से लेकर नीचे तक के सभी ब्रिटिश अधिकारी राष्ट्रवादी नेताओं को 'बेवफा बाबू'', ''राजद्रोही ब्राह्मण तथा ''हिंसक खलनायक'' कहने लगे। कांग्रेस को ''रोजद्रोह का कारखाना'' कहा जाने लगा। डफरिन ने 1887 में एक सार्वजनिक भाषण में राष्ट्रीय कांग्रेस पर हमला किया तथा उसे ''जनता के एक बहुत सूक्ष्म भाग'' का प्रतिनिधि बताकर उसकी हंसी उड़ाई। लॉर्ड कर्जन ने 1900 में विदेश सचिव को बतलाया कि ''कांग्रेस का महल भरभरा रहा है और भारत में रहते हुए मेरी मुख्य महत्त्वाकांक्षा यह है कि मैं शांति के साथ इसे मरने में सहयोग दे सकूं। भारतीय जनता की बढ़ती एकता उनके शासन के लिए एक बड़ा खतरा है, यह महसूस करके अंग्रेज अधिकारियों ने 'बांटो और राज करो' की नीति को और भी जमकर लागू किया। उन्होंने सैयद अहमद खान, बनारस के राजा शिवप्रसाद तथा दूसरे ब्रिटिश–समर्थक व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया कि वे कांग्रेस के खिलाफ आंदोलन चलाएं। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों में भी फूट डालने की कोशिश की। राष्ट्रवाद का विकास रोकने के लिए उन्होंने एक तरफ छोटी–छोटी छूटे देने और दूसरी तरफ निर्मन दमन करने की नीति अपनाई। फिर भी, अधिकारियों का यह विरोध राष्ट्रीय आंदोलन का विकास रोकने में असफल रहा।

निष्कर्ष

राष्ट्रवादी आंदोलन और राष्ट्रीय कांग्रेस को आरंभिक चरण में अधिक सफलता नहीं मिली। जिन सुधारों के लिए राष्ट्रवादियों ने आंदोलन छेड़े उनमें से बहुत थोड़े ही सरकार ने लागू किए।

इस आलोचना में बहुत कुछ सच्चाई है। मगर आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन को असफल घोषित करना भी आलोचकों के लिए सही नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो जो काम उन्होंने हाथ में किए थे, उसकी तात्कालिक कठिनाइयों को देखते हुए, इस आंदोलन का इतिहास बहुत उज्जवल है। यह अपने समय की सबसे प्रगतिशील शक्ति का सूचक था। यह एक व्यापक राष्ट्रीय जागृति लाने तथा जनता में एक ही भारतीय राष्ट्र के सदस्य होने की भावना जगाने में सफल रहा। इसने भारतीय जनता को उनके सांझे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हितों से जुड़े होने तथा साम्राज्यवाद के रूप में एक सांझे शत्रु के अस्तित्व के प्रति जागरूक किया और इस प्रकार उनको एक राष्ट्र में एकताबद्ध किया। इसने जनता को राजनीतिक कार्य में प्रशिक्षित किया, उनमें जनतंत्र, नागरिक स्वतंत्रताओं, धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया, उनमें आधुनिक दृष्टिकोण जगाया तथा ब्रिटिश शासन की बुराईयो को उनके सामने रखा।

सबसे बड़ी बात यह है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सही चरित्र को निर्ममतापूर्वक उजागर करने में आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अग्रगामी भूमिका निभाई। उन्होंने लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण

आर्थिक प्रश्न को देश की राजनीतिक रूप से पराधीन स्थिति से जोड़ा। साम्राज्यवाद की उनकी शक्तिशाली अर्थशास्त्रीय आलोचना ब्रिटिश शासन के खिलाफ बाद के सक्रिय जनसंघर्ष के दौरान राष्ट्रवादी आंदोलन का एक प्रमुख अस्त्र बन गई। अपने आर्थिक आंदोलनों के द्वारा ब्रिटिश शासन के निर्मम व शोषक चरित्र को बेनकाब करके उन्होंने उसके नैतिक आधारों को कमजोर किया। आरंभिक राष्ट्रवादी आंदोलन ने एक साझा राजनीतिक–आर्थिक कार्यक्रम भी पेश किया जिसके आधार पर भारतीय जनता एकजुट होकर बाद में राजनीतिक संघर्ष चला सकी। इसने यह राजनीतिक सत्य सामने रखा कि भारत का शासन भारतीयों के हित में चलना चाहिए। इसने राष्ट्रवाद के प्रश्न को भारतीय जीवन का एक प्रमुख प्रश्न बना दिया। इसके अलावा नरमपंथियों का राजनीतिक कार्य धर्म, भावुकता या खोखली भावना की दुहाई न देकर जनता के जीवन की ठोस वास्तविकता के ठोस अध्ययन और विश्लेषण पर आधारित था। आरंभिक आंदोलन की कमजोरियों को तो बाद की पीढ़ियों ने दूर कर दिया और उसकी उपलब्धियां आगे के वर्षो में एक और जोरदार राष्ट्रीय आंदोलन का आधार बन गई। इसलिए हम कह सकते हैं कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद आरंभिक राष्ट्रवादियों ने वह बुनियाद बनाई जिस पर राष्ट्रीय आंदोलन आगे और भी विकसित हुआ। इसलिए उन्हें आधुनिक भारत के निर्माताओं में ऊंचा स्थान मिलना चाहिए। अपने आर्थिक आंदोलनों के द्वारा ब्रिटिश शासन के निर्मम व शोषक चरित्र को बेनकाब करके उन्होंने उसके नैतिक आधारों को कमजोर किया। आरंभिक राष्ट्रवादी आंदोलन ने एक साझा राजनितिक–आर्थिक कार्यक्रम भी पेश किया।

संदर्भ सूची

1. दत्त आर. सी. द इकोनॉमी हिस्ट्री ऑफ इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल, टुबनर एण्ड कंपनी, लंदन।
2. दत्त, आर. सी. इकोनॉमी हिस्ट्री ऑफ इंडिया इन द विक्टोरियन ऐज टुबनर एण्ड कंपनी, लंदन।
3. सिन्हा, एन. के. द इकोनॉमी हिस्ट्री ऑफ बंगालः फार्म प्लैसी टु द परमानेंट सेंटलमेंट, फर्मा के. एल. मुकोपाध्याय कलकत्ता।
4. चंद्र विपन द राइस एण्ड ग्रोथ ऑफ इकोनॉमी नेशनलाइज्म इन मॉडर्न इंडिया, पिपुल्स पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली।
5. चन्द्र विपिन ईजी इन कोलोनाइलिज्म ओरियेन्ट लॉगमेन, न्यु दिल्ली।
6. कुमार, धर्मा, एण्ड राय चौधरी, तपन कैमब्रिज इकोनॉमी हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वोल्यूम 2, कैमब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस कैमब्रिज।
7. इस्लाम सिराज द परमानेंट सेटलमेंट इन बंगाल, 1793–1819 बंगला ऐकेडमी, डाका।
8. गोपाल एस. परमानेंट सेटलमेंट इन बंगाल एण्ड इटस रिजल्ट, जी. अलीन एण्ड अनवीन, लंदन।
9. बक्ची, ऐ. के. प्रोइवेट इनवेस्टमेन्ट इन इंडिया 1900–1939, कैमब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैमब्रिज।
10. थॉरनर, डाइनिल एण्ड थॉरनर, एलाइस लैंड एण्ड लेबर इन इंडिया, एशिया पब्लिसिंग हाउस, बम्बई।
11. गदगिल, डी. आर. द इंडस्ट्रीयल इवोलुसन ऑफ इंडिया इन रिसेन्ट टाईम्स, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड।
12. दत्त आर. पालमी, इंडिया टुडे पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस बम्बई।